29

अपूर्व-अवसर

(श्रीमद् राजचन्द्रजी)

अपूर्व-अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।
सम्बन्धों का बंधन तीक्ष्ण छेद कर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ॥
अपूर्व..... ॥ 1 ॥

उदासीन वृत्ती हो सब परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब।
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं,
तन में किंचित भी मूर्छा नहिं होय जब।
अपूर्व.... ॥ 2 ॥

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो।
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब॥
चरित्र-मोह का क्षय जिससे हो जायेगा।
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब॥ 3 ॥

आत्मलीनता मन-वचन-काया योग की,
मुख्यरूप से रही देह पर्यंत जब।
भयकारी उपसर्ग परिषह हो महा,
किन्तु न होवेगा स्थिरता का अन्त जब॥ 4 ॥

संयम ही के लिए योग की वृत्ति हो,
निज आश्रय से, जिन आज्ञा अनुसार जब।
वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी,
होऊँ अन्त में निजस्वरूप में लीन जब॥ 5॥

पञ्च विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं,
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब।
द्रव्य-क्षेत्र अरु काल-भाव प्रतिबन्ध बिन,
वीतलोभ को विचरूँ उदयाधीन जब॥ 6॥

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता,
मान भाव प्रति दीनभावमय मान जब।
माया के प्रति माया साक्षी भाव की,
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब॥ 7॥

बहु उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब।
देह जाय पर माया नहिं हो रोम में,
लोभ नहिं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥ 8॥

नग्नभाव मुंडभावसहित अस्नानता,
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब।
केश-रोम-नख आदि अङ्ग शृङ्गार नहिं,
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रन्थ-सिद्ध जब ॥9॥

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता,
मान-अमान में वर्ते एक स्वभाव जब।

जन्म-मरण में हो नहिं न्यून-अधिकता,
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब॥ 10॥

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥ 11॥

घोर तपश्चर्या में, तन सन्ताप नहिं,
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन।
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की।
सबमें भासे पुद्गल एक स्वभाव जब॥ 12॥

ऐसे प्राप्त करूँ जय चारित्रमोह पर,
पाऊँगा तब करण अपूर्व भाव जब।
क्षायिकश्रेणी पर होऊँ आरूढ़ जब,
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्धस्वभाव जब॥ 13॥

मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर,
प्राप्त करूँगा क्षीणमोह गुणस्थान जब।
अन्त समय में पूर्णरूप वीतराग हो,
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब॥ 14॥

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ,
हो भवतरु का बीज समूल विनाश जब।
सकल ज्ञेय का ज्ञाता-दृष्टा मात्र हो,
कृत्यकृत्य प्रभु वीर्य अनन्त प्रकाश जब॥ 15॥

चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो,
जली जेवरीवत् हो आकृति मात्र जब।
जिनकी स्थिति आयु कर्म आधीन है,
आयुपूर्ण हो तो मिटता तन-पात्र जब॥ 16॥

मन-वच-काया अरु कर्मो की वर्गणा,
जहाँ छूटे सकल पुद्गल सम्बन्ध जब।
यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जब॥ 17॥

इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता,
पूर्ण कलङ्कविहीन अडोल स्वरूप जब।
शुद्ध निरञ्जन चेतन मूर्ति अनन्यमय,
अगुरुलघु अमूर्त सहजपदरूप जब॥ 18॥

पूर्व प्रयोगादिक कारक के योग से,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब।
सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में,
अनन्तदर्शन ज्ञान अनन्त सहित जब॥ 19॥

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब॥ 20॥

यही परमपद पाने को धर ध्यान जब,
शक्तिविहीन अवस्था मनरथरूप जब।
तो भी निश्चय 'राजचन्द्र' के मन रहा,
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब ॥ 21॥